द्वितीय अध्याय
वृंदावनलाल वर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

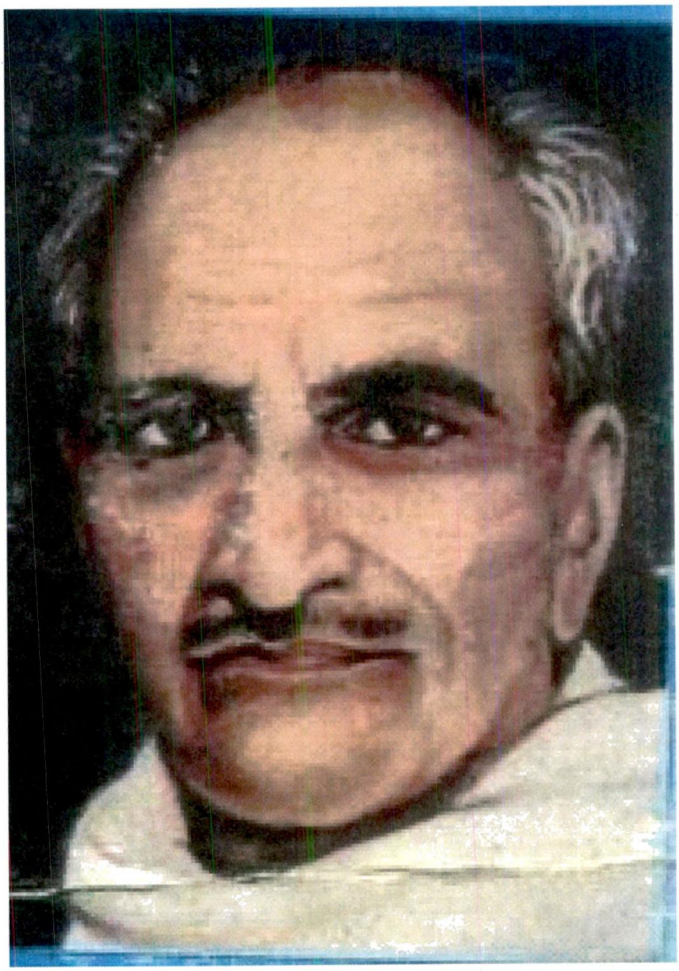

श्री वृंदावनलाल वर्मा

द्वितीय अध्याय : वृन्दावनलाल वर्मा का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

वृन्दावनलाल वर्मा हिन्दी के सुविख्यात ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। अँग्रेज़ी साहित्य के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार सर वाल्टर स्कॉट से तुलना करते हुए कुछ विद्वानों ने वर्माजी को हिन्दी का ''वाल्टर स्कॉट'' कहकर पुकारा है। वर्माजी ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के साथ ही साथ अनेक सामाजिक उपन्यासों, कहानियों और नाटकों की भी रचना की है परन्तु इनकी ख्याति का मुख्य आधार इनके ऐतिहासिक उपन्यास ही हैं।

1. हिन्दी के वाल्टर स्कॉट वर्माजी :

ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वर्माजी का अग्रगण्य स्थान है। ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में हमने उनमें बंगला के राखाल बाबू को पा लिया है। कहा जा सकता है कि वे हिन्दी के वाल्टर स्कॉट हैं।★ *(सर्वप्रथम श्री गणेशशंकर विद्यार्थी ने वर्माजी को हिन्दी का वाल्टर स्कॉट कहा था। – वृन्दावनलाल वर्मा–साहित्य और समीक्षा, सियारामशरण प्रसाद, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 223)* मानव मन का विशद अध्ययन उन्होंने किया है। जीवन के प्रति उनकी पकड़ गहरी है। युग की आत्मा और यथार्थ स्वरूप को पहचानकर भाव–बोध के स्तर को विशिष्ट आयामों में यथार्थवादी ढंग से ले जाने की उनमें अपूर्व क्षमता है। वर्माजी आज के कुण्ठाग्रस्त उत्पीड़ित समाज को सहानुभूति की दृष्टि से देखनेवाले हैं। रूढ़ियों को तिरस्कृत कर प्रगतिशील तत्वों को उन्होंने अपने साहित्य में स्थान दिया है। उनका साहित्य राष्ट्रीयता और स्वदेशप्रेम से ओतप्रोत है। उन्होंने सच्ची घटनाओं के तथ्यातथ्य को कथाओं के माध्यम से समाज के सम्मुख उपस्थित किया है।

वृंदावनलाल वर्मा मात्र एक श्रेष्ठ उपन्यासकार के रूप में नहीं वरन् हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास की नींव को सुदृढ़ बनाकर अपने क्षेत्र के युग–निर्माता लेखक के रूप में विख्यात हुए हैं। पैनी दृष्टि एवं अटूट आस्था से अपने–अपने प्रदेशों के अतीत के इतिहास में प्रवेश कर, उससे जीवन के मार्मिक प्रसंगों की सामग्री का चयन कर कलात्मक रूप देनेवाले और अपनी भाषा के 'वाल्टर स्कॉट' के नाम से विख्यात हैं।

2. जीवन परिचय :

बुंदेलखंड और उसकी जनवादी संस्कृति के अनन्य भक्त, श्री वृंदावनलाल वर्मा का जन्म झाँसी जिले के मउरानीपुर कस्बे में 9 जनवरी 1889 ई. को एक सामान्य कायस्थ परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री अयोध्याप्रसाद था और माता का नाम सबरानी। इनके पिता झाँसी में रजिस्ट्रार, कानूनगो थे। इनकी माता धार्मिक विचारों की महिला थी जिनका वैष्णव धर्म में अड़िग विश्वास था। वर्माजी को ये उनके पिता की अपेक्षा अधिक प्यार करती थीं। परन्तु इनसे भी अधिक प्यार वर्माजी को अपनी परदादी से मिला जो इनको 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' की वीरता की कहानी सुनाया करती थी। वर्माजी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' का प्रेरणा स्रोत इनकी परदादी ही थी। इनके प्रपितामह आनंदराम झाँसी की रानी की ओर से लड़ते हुए सन् 1857 की क्रान्ति में वीरगति को प्राप्त हुए। इनके पितामह कन्हैयालाल भी सच्चे देशभक्त थे। उन्हें भी इस क्रान्ति के सिलसिले में बंदी बना लिया गया था। महारानी विक्टोरिया द्वारा सबको क्षमादान करने पर ही उनको जेल से छुटकारा मिला।

परदादी के ही मुँह बालक वृंदावन ने यह भी सुना कि कई पूर्वजों ने, कवि और वैद्य के नाते भी, ख्याति पायी। चाचा बिहारीलाल तहसील में अहलमद थे, पर साहित्य के इतने प्रेमी कि नियम से पुस्तकें खरीदा करते, भले ही वेतन से घर

चलाना दूभर होता। इन्हीं चाचा को देख–देखकर वृंदावनलाल वर्मा में छुटपन से ही साहित्य के प्रति अनुराग जागा। पिता अयोध्याप्रसाद परिवार के प्रति समर्पित जैसे थे। उनका सारा समय गृहस्थी की देखरेख में ही बीत जाता। उनसे वृंदावनलाल वर्मा को जो एक चीज़ मिली, वह थी – दृढ़ अनुशासन भावना।

इस प्रकार उत्तराधिकार में प्राप्त दो गुण वृंदावनलाल वर्मा में बालपन से ही देखने में आये; संघर्ष और जूझते रहने की प्रवृत्ति, जिसने शारीरिक सुस्वस्थता की ओर सचेत रखा और उत्कृष्ट पुस्तक प्रेम। उन्होंने पारंपरिक व्यायामों का, मन लगाकर अभ्यास किया और पौष्टिक आहार की सब दिन सुविधा न रहते भी, शरीर को सदा सुस्वस्थ रखा। इस प्रवृत्ति से ही उनकी अदम्य आखेट–प्रियता उपजी थी। कंधे पर राइफल संभाले हुए वह बीहड़ पहाडियों और घने जंगलों में निर्बाध–घूमा करते। उनके भीतर का यायावर उन्हें बरबस बुंदेलखंड के कोने–कोने लिये घूमता और कोई पेड़–पत्थर ऐसा न होता, जिससे उन्हें लगाव न हो। वह जैसे अपनी अन्तर्भावनाओं के केन्द्र, उस प्रदेश के इतिहास में रोमांस और साहसिकता के चिर खोजी बने रहे और प्रचुर मात्रा में उसका दर्शन भी पा सके।

उनका पुस्तक प्रेम, स्कूल और कॉलेज पुस्तकालयों में उन्हें घण्टों तल्लीन रखता। उनके हिन्दी और अँग्रेज़ी साहित्यों के ज्ञान पर अध्यापकगण भी बहुधा चकित रह जाते। सामान्य बात नहीं होती कि, कोई कसरती भी हो और अध्ययन में भी आगे रहे। वृंदावनलाल वर्मा ने प्रमाणित किया कि यह असंभव नहीं।

अनेक अभावों और कठिनाइयों के बावजूद उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से बी.ए. किया। प्राइवेट ट्यूशन भी करते थे, अगरचे मास में पाँच रुपये ही मिल पाते। राजपूत प्रेस के मालिक हनुमंत सिंह रघुवंशी के कृतज्ञ रहे कि उन्होंने आगरे में ही ट्यूशन दिलवा दी। जिन कठिनाइयों के बीच वृंदावनलाल वर्मा ने

शिक्षा–काल पूरा किया उनका आभास इतने से ही मिल सकता है कि 1916 में वकील बन जाने तक वे एक भी गरम कपड़ा नहीं बनवा सके।

अगस्त 1916 में वृंदावनलाल वर्मा ने वकालत शुरू की और थोड़े दिनों में झाँसी के अच्छे वकीलों में गिने जाने लगे। राजनीति में उनका झुकाव आरंभ से ही उदारतावादियों की ओर था। उन दिनों ब्रिटिश सरकार ने अपनी नीतियों के प्रति जनता का समर्थन जुटाने के उद्देश्य से उत्तर प्रदेश में शांति सभाएँ संगठित की थीं। वृंदावनलाल वर्मा भी झाँसी के जिला अधिकारियों द्वारा बनायी गयी सभा से संबंध थे। इसके द्वारा उन्होंने देश भक्तों और क्रान्तिकारियों को विशेषकर उग्रवादियों को निरन्तर लाभ पहुँचाया।

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक के प्रारंभ में, एक दिन उनके मन में विचार आया कि झाँसी से चार किलोमीटर पर बसे बूड़ाग्राम में यदि फार्मिंग करें तो आय और समय की इतनी सुविधा बन सकेगी कि फिर एकचित होकर लेखन में लग जाएँ। प्रयोग असफल रहा। उल्टे, देनदारी इतनी लद गयी कि कई बरस फिर वकालत में घुलना पड़ा।

2.1. प्राप्त पुरस्कार एवं सम्मान :

वर्माजी की साहित्य–सेवा को दृष्टि में रखकर इन्हें निम्नलिखित उपाधियाँ प्रदान की गईं :–

1. आगरा विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट् की मानद उपाधि – 1958 ई. में।
2. भारत सरकार से पद्मभूषण–1965 ई. में। (वर्माजी ने सरकार की हिन्दी के प्रति नीतियों से असंतुष्ट होकर इसको लौटा दिया।)
3. हिन्दी साहित्य सम्मेलन से 'साहित्य–वाचस्पति'–1965 ई. में।

इनके अतिरिक्त इनको निम्नलिखित पुरस्कार भी प्रदान किए गए:–

पुरस्कार एवं सम्मान

क्र. सं.	पुरस्कार	राशि
1.	डालमिया पुरस्कार	रु. 2,100
2.	साहित्यकार–संसद पुरस्कार	रु. 1,000
3.	मध्यप्रदेश राज्य पुरस्कार	रु. 1,000
4.	उत्तर प्रदेश राज्य पुरस्कार	रु. 1,000 (दो बार)
5.	नागरी प्रचारिणी पुरस्कार	रु. 250 (तीन बार)
6.	भारत सरकार का प्रथम पुरस्कार	रु. 2,000
7.	हिन्दुस्तानी एकेडेमी पुरस्कार	रु. 500
8.	सोवियतलैण्ड नेहरू पुरस्कार	रु. 8,000

2.3. मृत्यु :

वृंदावनलाल वर्मा जी की इहलोक–यात्रा अस्सी वर्ष की आयु में 23 फरवरी, 1969 को सम्पन्न हुई। उन्हें अपने जीवनकाल में साहित्य और देश से यथोचित सम्मान प्राप्त हुआ था। वे अंतिम समय तक रचनारत रहे। उनकी मृत्यु के बाद उनके चार उपन्यास अब तक प्रकाशित हुए हैं और लगभग इतने ही प्रकाशित होने शेष है। वर्माजी अपनी उत्तम कोटि की बहु संख्यक रचनाओं के लिए सदैव स्मरण किये जाएँगे।

3. बुंदेलखंड और वर्माजी :

वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों की आत्मा है, बुंदेलखंड की भूमि के प्रति उनका प्रेम। 'अपनी कहानी' में वे लिखते हैं कि एक बार पंजाबियों के मुँह से उन्होंने बुंदेलखंड की बुराई सुनी। उस समय उनके मन को बड़ी चोट लगी और तब से उन्होंने बुंदेली भाषा, बुंदेली लोकगीत, लोककथाएँ, प्रादेशिक मेले–ठेले,

उत्सव सबमें गहरी रुचि लेनी शुरू की। बुंदेलखंड को वर्माजी की कथाभूमि कहा जा सकता है। यह भारतवर्ष का मध्यवर्ती भू–खंड उत्तर की ओर गंगा के मैदान से मिलता है। दक्षिण की ओर नर्मदा नदी की गहरी घाटी इसकी सीमा है। पश्चिम में मालवा का पठार और पूरब में छोटा नागपुर का पठार है। बुंदेलखंडी बोली और संस्कृति की दृष्टि से उत्तर प्रदेश के झाँसी, जालौन, बाँदा, ललितपुर और मध्यप्रदेश के सागर, दमोह, जबलपुर, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना दतिया और ग्वालियर जिले के दक्षिणी भाग इस क्षेत्र में आते हैं। घने वनों की पर्याप्त संख्या होने से सिंह, अरने, भैंसे, जंगली सुअर, हिरण आदि आखेट के पशुओं की इस क्षेत्र में प्रचुरता है। विशेषतः नरवर और मनियागढ़ शिकार के लिए आदर्श स्थान हैं।

माँडेय, कैयूर आदि पर्वत श्रेणियों ने इस प्रदेश को जटिल घाटियों का उपहार दिया। गढ़कुंडार अजयगढ़, बौरगढ़ और कालिंजर अपने समय के अजेय दुर्ग समझे जाते थे। इसके रक्षक दुर्दांत योद्धा। बेतवा, सिंधु, बसान, पहुज, टोंस आदि अनेक नदियों से अभिसिंचित होने पर भी कठिन तेलिया पत्थरों की विशालकाय चट्टानों और शुष्क पठारी भूमि के कारण यहाँ के निवासी कठोर परिश्रम करते थे। प्रकृति से लड़ते रहे। गर्मियों में भीषण लू और सर्दियों में कड़कड़ाते शीत ने बुंदेलखंड को कष्ट सहिष्णुता सिखाई।

डॉ. कृष्णा अवस्थी ने 'वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों का सांस्कृतिक अध्ययन' ग्रंथ में छठा अध्याय–'बुंदेलखंड की संस्कृति के स्थानीय तत्वों का दिग्दर्शन' में, विस्तार से, उस जनपद की सामंती मनोवृत्तियाँ, आन–बान, स्वभाव सिद्ध शौर्य, त्याग और बलिदान, प्रतिशोध और कर्तव्यनिष्ठ शौर्य तथा स्वातंत्र्य प्रेम, विप्लवी कृति आदि का वर्णन दिया है। वहाँ के रीतिरिवाज, विश्वास और मान्यताएँ, स्त्रियों की विशेष स्थिति उनके उपन्यासों में कैसे प्रतिबिंबित हुए हैं, इसका भी वर्णन अध्याय सात में सोदाहरण दिया है। मुंशी अजमेरी ने जो वर्णन

इसकी भूमिका में दिया है, उनके उपन्यास 'मृगनयनी' और 'महारानी दुर्गावति' में घटित होता है –

''अड़े उच्च गिरी और सघन वन लहराते हैं
खड़े खेत निज छटा छबीली छहराते हैं
गरुड़, तेंदुए, रीछ, बाघ, स्वच्छंद विचरते
शूकर, साँबर, रीछ, हिरन, चीतल हैं चरते,
आखेटक के लिए सदा जो भेंट भूमि है,
अति उद्दंड बुंदेलखंड आखेट भूमि है।''★

(हिन्दी के साहित्य–निर्माता वृंदावनलाल वर्मा, डॉ. प्रभाकर माचवे, राजपाल एण्ड सान्स, पृ. 17)

बुंदेलखंड के प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति वृंदावनलाल वर्मा में गहन अनुराग भाव था। उनका सारा लेखन इस अनुराग भाव से प्रभावित है। एक मित्र को उन्होंने एक बार लिखा – ''जब भी खाली होता हूँ राइफल लेकर निकल पड़ता हूँ और फिर कई–कई दिन जंगल–पहाड़ियों में घूमा करता हूँ। मन को कहीं कुछ भी प्रभावित करता दिख जाता है तो कागज पर उसके शब्द चित्र उकेर लेता हूँ। 'गढ़कुण्डार' तो अधिकांश लिखा ही इस तरह गया। 'विराटा की पद्मिनी' लिखने के पूर्व कई बार खजुरा हो गया। कुछ अध्याय तो लिखे भी वहीं रहकर।''★★
(वृंदावनलाल वर्मा, राजीव सक्सेना, साहित्य अकादेमी, पृ. 16)

वर्माजी का यह प्रकृति–प्रेम, वास्तव में, बुंदेलखंड के जन–साधारण के प्रति उनकी वास्तविक प्रेम–भावना का ही प्रतीक है। वहाँ का जन–समाज, निर्धन और अभावग्रस्त भले हो, अपनी देशभूमि को ऊँचे सांस्कृतिक मूल्यों की संपदा उसने ही दी। बुंदेलखंड की नदियाँ, नाले, झीलें और वहाँ के पर्वतवेष्ठित शस्य श्यामल खेत वर्माजी की प्रेरणा के प्रधान कारण हैं। इसीलिए ही उनको हिस्टॉरिकल रोमांस पसंद है।

वस्तुतः वर्माजी का ऐसा कोई उपन्यास नहीं, जिसमें बुंदेलखंड के नदी–पहाडों, फूल–पत्तों, जंगलों और जीव–जन्तुओं और देहातों व लोक जीवन की सुंदर–सुंदर छवियाँ देखने को न मिलती हों। सच तो यह है कि वर्माजी की हिन्दी भी बुंदेलखंड की लय लिये हुए रहती है।

नदियों ने तो वृंदावनलाल वर्मा की कल्पनाओं को जैसे पंख ही दे दिये हों। कहीं उनके वर्णन में ये चढ़ी बाढ़ का विकराल रूप लिये दिखतीं तो, कहीं निरे देहात की लाजों–भरी नवेली बहू। यों उनकी पुस्तकों में सबसे अधिक वर्णन और उल्लेख बेतवा के मिलते हैं। लगता है, बेतवा ही उस समूचे प्रदेश की नियति में उसकी साझी रही हो। बेतवा ही साक्षी रही है, युगम प्रेम की उद्दाम भावनाओं की; इसी ने देखे हैं भरे यौवन के सपनों में लिपटे युवा–युवतियों के आत्म–बलिदान; और इसी के आसपास की भूमि में सिमटे पड़े एक से बढ़कर एक रोमांचकारी युद्ध। सचमुच, बेतवा एक सफल प्रतीक है उस समूचे प्रदेश की ऊँची–नीची और बीहड़ धरती का और उस धरती के जीवन का–जो अब तक अनकहा–सा रहा हो। घटनाओं पर घटनाएँ होती हुई निकल गयी, किन्तु बेतवा स्वयं जीवन की नाई अपनी सारी गतिमयता लिए हुए बहती रही है। बाढ़ के वेग में झूमती हुई बेतवा का यह एक चित्र 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' में आता है, ''बेतवा की धार पुंज के ऊपर पुंज–सी दिखलायी पड़ती थी। क्रम अभंग और अनन्त था। जब एक क्षण में ही अनेक बार एक जलपुंज दूसरे से आगे निकल जाने का अनवरत, अथक, अटूट प्रयास करता तब इतना फेनिल हो जाता कि इतनी बड़ी, निरंतर बहती और उत्पन्न होती हुई राशियाँ आड़े आ जाती थीं कि घुडसवारों को सामने का किनारा दिखलायी नहीं पड़ता था। लहरों के एक पल्लड को चीरा, उस पार के झाग को बेधा कि दूसरा सामने। शब्दमय प्रवाह की निरर्थक भाषा मानो बार–बार कहती थी; बचो, बचो! सामने की उथल–पुथल से आगे बढ़े कि बगल से थपेड़ पड़ी।

... सवारों के चारों ओर भँवरें पड़–पड़ जा रही थीं।''★ *(झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 196)*

कहा जा सकता है कि प्रकृति–वर्णन स्वयं में लक्ष्य नहीं हुआ करता। उसके द्वारा केवल एक पृष्ठभूमि प्रस्तुत की जाती है। पृष्ठभूमि : वहाँ के सामाजिक जीवन की और जीवनगत कार्य–व्यवहारों की। बेतवा के तूफानी रूप चित्रण के द्वारा भी झाँसी के शूरवीरों की अदम्यता दर्शायी गयी है कि उन्होंने किस प्रकार प्राणों की बाजी लगाकर बेतवा की उन्मत्त धारा को पार किया।

घटनास्थल और पात्रों पर भी बल इस दृष्टि से दिया जाता है कि एक क्षेत्र विशेष की श्री–शोभा, वनस्पति, जीव–जन्तु और लोक–संस्कृति का परिचय मिल सके। लेखन की इस शैली को पाँचवे दशक में 'आँचलिक' नाम अभिहित किया गया। वृंदावनलाल वर्मा के लेखन में तीन दशक पूर्व ही इसकी विशेषताएँ उपस्थित थीं।

वृंदावनलाल वर्मा के वर्णनों में लोकगीत और लोकनृत्य जगह–जगह पिरोये हुए मिलते हैं। कहीं–कहीं तो पात्र बोलते भी अपनी बुंदेलखंड में ही हैं। इससे उस बोली की अपनी वह सादगी और कोमलता सामने आ जाती है, जो हिन्दी में शायद लाते न बनती। वर्णनों में एक वास्तविकता भी इस प्रकार झलकने लगती है कि सचमुच बुंदेलखंड के मुग्धकर, प्राकृतिक सौंदर्य से अभिभूत होकर कोई भी 'गढ़ कुंडार' के दिवाकर की उस भावना को दोहरा उठेगा : ''इस सुंदर देश के लिए प्राण देना बड़े गौरव की बात होगी।''★★ *(वृंदावनलाल वर्मा, राजीव सक्सेना, साहित्य अकादेमी, पृ. 19)*

4. साहित्यिक परिचय :

सन् 1927 तक पहुँचकर वर्माजी का साहित्यकार का **रूप**, **जीवन** के विविध अनुभव संजोकर मुखर हो उठा था। उन्होंने अपनी प्रथम प्रौढ़ कृति

ऐतिहासिक उपन्यास 'गढ़ कुण्डार' की रचना की। फिर उनका लेखक मनो जग गया। उनकी असाधारण क्षमता जीवन को आत्मसात कर रचना के रूप में परिणत करने में जुट गई। 'गढ़ कुण्डार' जैसा महाकाव्य उपन्यास केवल साठ दिनों में लिखकर दस–पंद्रह दिन बाद वे 'लगन' उपन्यास लिखने में जुट गए। सन् 1922 के आरंभ में 'कुण्डलीचक्र' और 'प्रेम की भेंट' उपन्यासों की रचना की। सन् 1929–30 में उन्होंने अपना दूसरा सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'विराटा की पद्मिनी' लिखा। इसके बाद वर्माजी का लेखन कार्य परिस्थितिवश बहुत दिनों तक रुका रहा।

वे परिवार के लिए यथेष्ट आमदनी का प्रबंध कर निश्चिन्तापूर्वक लेखन–कार्य की सुविधा जुटाने में एक बृहत् बागवानी योजना में स्वभावानुसार जोरों से जुट गए। झाँसी के समीप बंजर जमीन में दस हज़ार पेड़ पपीते का लगाकर उन्होंने उत्तम 'पैपेन' तैयार किया। उनकी 'पैपेन' विदेशों में सराई गई और हज़ारों रुपयों के आर्डर आ गए, किन्तु पेड़ों की समुचित सिंचाई के अभाव में बाग सूख गया। ढेर–सी आय की योजना मिट्टी में मिल गई। फल वह निकला कि भारी कर्जा वर्माजी के सिर पर लद गया, जो बहुत दिनों बाद लेखन–प्रकाशन के अथक परिश्रम से उतारा जा सका। सन् 1940 के लगभग टीकमगढ़ नरेश ने वर्माजी को कुण्डारगढ़ के पास जमीन दे दी। जमीन फार्म के लिए थी। वहाँ वर्माजी ने 'शामसी' नामक गाँव बसा लिया और उस एकांत में जमकर लगभग पंद्रह वर्ष तक नित्य बारह घंटे से अधिक लिखकर उन्होंने दर्जनों उपन्यासों, नाटकों तथा बीसियों कहानियों को जन्म दिया।

वर्माजी की साहित्य–साधना का प्रारंभ–नाटक रचना से हुआ है। सन् 1927 से वे उपन्यास की ओर झुके। उन्होंने अनेक कहानियाँ भी लिखी हैं। एकांकी नाटक और फिल्मी नाटकों की ओर भी इनका ध्यान गया है। इस प्रकार

हम देखते हैं कि इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। हिन्दी कथा–साहित्य में वर्माजी का महत्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक उपन्यासों की अपेक्षा उनके ऐतिहासिक उपन्यास अधिक सफल हैं। वर्माजी की सृजन–कल्पना ऐतिहासिक रोमांसों में खूब रमी है; इसलिए उन्होंने ऐतिहासिक सत्य की रक्षा करते हुए अनेक रोचक कहानियों से हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध किया है। भारतीय इतिहास के साथ वे अपने प्रांत के भूगोल से भी भली–भाँति परिचित हैं। श्री वृंदावनलाल वर्मा हिन्दी उपन्यास साहित्य की एक अद्वितीय विभूति हैं। उन्होंने अपनी अनमोल ऐतिहासिक रचनाओं के द्वारा हिन्दी के भंडार को भरा है। इससे हमारे साहित्य का गौरव बढ़ा है।

4.1. कृतित्व :

हिन्दी साहित्य के लिए वर्माजी की देन बहुसंख्यक एवं अत्यधिक विशिष्ट है। उनकी बहुमुखी प्रतिभा साहित्य की सभी विधाओं जैसे उपन्यास, नाटक, एकांकी, कहानी, कहानी संग्रह, जीवनी, आत्म–कहानी, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, लोक गीत आदि में देखने को मिलती है। वर्माजी की रचनाएँ रचनाक्रम के अनुसार निम्नलिखित हैं।

उपन्यास साहित्य

क्र. सं.	उपन्यास का नाम	रचना वर्ष	प्रकाशन वर्ष
1.	गढ़ कुण्डार–ऐतिहासिक उपन्यास	1927	1928
2.	लगन–सामाजिक उपन्यास	1927	1928
3.	संगम–सामाजिक उपन्यास	1927	1928
4.	प्रत्यागत–सामाजिक उपन्यास	1927	1928
5.	कुण्डली चक्र–सामाजिक उपन्यास	1928	1929
6.	प्रेम की भेंट–सामाजिक उपन्यास	1928	1931

क्र. सं.	उपन्यास का नाम	रचना वर्ष	प्रकाशन वर्ष
7.	विराटा की पद्मिनी–ऐतिहासिक उपन्यास	1933	1936
8.	मुसाहिबजू–ऐतिहासिक उपन्यास	1940	1946
9.	कभी–न–कभी–सामाजिक उपन्यास	1942–43	1949
10.	झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई–ऐतिहासिक उपन्यास	1946	1946
11.	कचनार–ऐतिहासिक उपन्यास	1946	1948
12.	अचल मेरा कोई–सामाजिक उपन्यास	1947	1948
13.	हंस–मयूर–ऐतिहासिक उपन्यास	1947	1948
14.	माधवजी सिंधिया–ऐतिहासिक उपन्यास	1948	1957
15.	सोती आग–ऐतिहासिक उपन्यास	1948	1967
16.	टूटे काँटे–ऐतिहासिक उपन्यास	1949	1954
17.	मृगनयनी–ऐतिहासिक उपन्यास	1950	1950
18.	सोना–लोक कथा पर आधारित उपन्यास	1950	1951
19.	अमरबेल–सरकारी खेती पर उपन्यास	1952	1953
20.	भुवनविक्रम–ऐतिहासिक उपन्यास	1955	1957
21.	अहिल्याबाई–ऐतिहासिक उपन्यास	1955	1955
22.	उदयकिरण–सामाजिक उपन्यास	1960	1960
23.	आहत–सामाजिक उपन्यास	1960	1960
24.	रामगढ़ की रानी–ऐतिहासिक उपन्यास	1961	1961
25.	महारानी दुर्गावती–ऐतिहासिक उपन्यास	1961	1964
26.	कीचड़ और कमल–ऐतिहासिक उपन्यास	1963	1975
27.	देवगढ़ की मुस्कान–ऐतिहासिक उपन्यास	1967	1975

सन् 1991 तक अप्रकाशित उपन्यास साहित्य

क्र. सं.	उपन्यास का नाम	रचना वर्ष
28.	कब तक	1947
29.	अब क्या हो–ऐतिहासिक उपन्यास	1965
30.	अमर ज्योति–सामाजिक उपन्यास	1966
31.	ललितादित्य–ऐतिहासिक उपन्यास	1966

नाटक साहित्य

क्र. सं.	नाटक का नाम	रचना वर्ष	प्रकाशन वर्ष
1.	धीरे–धीरे	1937	1937
2.	मंगल सूत्र–सामाजिक नाटक	1946	1952
3.	राखी की लाज–सामाजिक नाटक	1946	1946
4.	जलंदर शाह–ऐतिहासिक नाटक	1947	1952
5.	फूलों की बोली–ऐतिहासिक नाटक	1947	1947
6.	बाँस की फाँस–सामाजिक नाटक	1947	1947
7.	काश्मीर का काँटा–राजनीतिक नाटक	1947	1947
8.	झाँसी की रानी–ऐतिहासिक नाटक	1947	1951
9.	बीरबल–ऐतिहासिक नाटक	1948	1951
10.	खिलौने की खोज–ऐतिहासिक नाटक	1948	1951
11.	पूर्व की ओर–ऐतिहासिक नाटक	1951	1951
12.	कनेर–सामाजिक नाटक	1951	1952
13.	पीलेहाथ–सामाजिक नाटक	1951	1951
14.	नीलकंठ–सामाजिक नाटक	1951	1952
15.	केवट–सामाजिक नाटक	1951	1952

क्र. सं.	नाटक का नाम	प्रकाशन वर्ष	रचना वर्ष
16.	ललित विक्रम–ऐतिहासिक नाटक	1953	1953
17.	निस्तार–सामाजिक नाटक	1954	1955
18.	देखा–देखी–सामाजिक नाटक	1955	1956
19.	चले चलो–सहकारी आंदोलन पर नाटक	1965	1975

कहानी साहित्य

क्र. सं.	कहानी एवं कहानी–संग्रह का नाम	प्रकाशन वर्ष
1.	राखीबंद भाई–कहानी (मासिक 'सरस्वती' में)	1909
2.	राजदूत की तलवार–कहानी	1909
3.	सफरेजिस्ट की पत्नी – कहानी	1910
4.	अँगूठी का दान–कहानी–संग्रह	1957
5.	कलाकार का दंड–कहानी–संग्रह	1950
6.	रश्मि समूह–कहानी–संग्रह	1950
7.	तोषी–कहानी–संग्रह	1954
8.	मेंढ़क का ब्याह–कहानी–संग्रह	1957
9.	शरणागत–कहानियाँ	1950
10.	ऐतिहासिक कहानियाँ	1957
11.	गौरव गाथाएँ	1975
12.	एक दूसरे के लिए हम–कहानियाँ	1975
13.	सरदार राणे खाँ–कहानियाँ	1975
14.	राष्ट्रीय ध्वज की आन–कहानियाँ	1975

इसके अलावा इन्होंने एकांकी, आत्मकहानी और 7 स्फुटकर रचनाएँ भी की हैं।

4.2. जीवन दर्शन :

वर्माजी के साहित्यिक क्षेत्र पर दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि मन में अतीत के प्रति अपार श्रद्धा का भाव होने से ही इन्होंने साहित्य सृजन में विशेष रुचि ली। सर्वप्रथम वर्माजी ने 'गढ़ कुंडार', 'लगन', 'प्रत्यागत', 'संगम', 'कुंडलीचक्र' आदि पुस्तकें लिखीं जिनका साहित्य जगत में स्वागत हुआ। इसके बाद तो इनकी साहित्य सृजन प्रवृत्ति निरंतर गति से हमारे साहित्यिक क्षेत्र में लम्बे समय तक चलती रही।

बाल्यकाल से ही वर्माजी पर राष्ट्रीयता, प्रेम, धर्म आदि का गहन रूप से प्रभाव पड़ा। जिसने उनके आगामी जीवन को प्रभावित किया। शौर्यपूर्ण अतीत ने इनके हृदय पर अमिट प्रभाव डाला तथा अँग्रेज़ इतिहासकारों के पूर्वाग्रहपूर्ण दृष्टिकोण ने इनके मन में उनके विरुद्ध प्रतिक्रिया की भावना पैदा कर दी। डॉ. नगेन्द्र इनके इतिहास प्रेम का श्रेय स्कॉट के उपन्यासों को देते हुए कहते हैं – ''स्कॉट के उपन्यासों के अध्ययन अनुशीलन में प्रवृत्त रहने के फलस्वरूप इनके मन में ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रणयन की प्रवृत्ति जन्मी।''★ *(भारतीय साहित्य कोश, संपादक, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 1155)* बुंदेलखंड की लोक कथाओं, किंवदंतियों और इतिहास का वर्माजी ने जितना अध्ययन किया है, जितनी गहराई और ईमानदारी से छानबीन की है, शायद ही अन्य किसी लेखक ने किया है। उक्त प्रदेश और भूमि की जीवित आत्मा का उसमें दर्शन होता है।

वर्माजी ने सर्वप्रथम अपने ही जीवन की घटनाओं को लेकर एक कहानी लिखी। समाज पर व्यापक प्रभाव डालने के उद्देश्य से उन्होंने उपन्यास, नाटक

आदि लिखना आरंभ किया। उन्होंने बुंदेलखंड के विगत इतिहास से ही अपने उपन्यासों की सामग्री का चयन किया। बुंदेलखंड के अतीत के प्रति वर्माजी में अपार श्रद्धा एवं ममत्व की भावना रही है। ''उन्हें इस बात का नाज था कि वे उस बुंदेलखंड के तेलिया पत्थर हैं जिस पर बड़े–बड़े भूकम्पों तक का असर नहीं होता।''★ *(वृंदावनलाल वर्मा का उपन्यास साहित्य, डॉ. मोहिनी सहाय, अनुपम प्रकाशन, पृ. 78)*

प्रकृति के खुले वातावरण में भ्रमण के शौक ने भी इनके साहित्य पर प्रभाव डाला। शिकार के वे शौकीन थे। ऐसे ही एक अवसर पर जब वे बेतवा के तट पर झाड़ी में छिपे शिकार करने की प्रतीक्षा कर रहे थे, चाँदनी की आभा में खड़े कुंडार के निर्जन दुर्ग ने उनके मनोजगत में हलचल मचा दी। विविध विचारों के बीच से गुजरते हुए उन्होंने रात्रि व्यतीत की और प्रातःकाल तक एक उपन्यास की रूपरेखा लिखना प्रारंभ किया तथा यह उपन्यास दो माह में समाप्त कर दिया, उनका यह प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'गढ़ कुंडार' था।

'विराटा की पद्मिनी' का सृजन भी कुछ इसी प्रकार गाँव वालों से सुनी कहानी और स्वयं देखे गए उसके पद चिह्नों द्वारा हुआ। उनके अन्य उपन्यास भी 'माधवजी सिंधिया' तथा 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' के प्रेरणा स्रोतों को भी उन्होंने स्पष्ट किया है। ''मैं जब बोर्डिंग हाउस के जीवन में था, एक स्वप्न देखा कि हॉकी–ग्राउंड पर युद्ध हो रहा है और मैं रानी की तरफ से, 'स्वराज्य' के लिए लड़ता हुआ घायल हो गया हूँ, तब जागने पर बड़ा अचंभा हुआ, क्योंकि खेल में उस दिन हॉकी का डंडा भी नहीं खाया था। यह स्वप्न मुझको प्रायः दिक् किया करता था।''★★ *(झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, वृंदावनलाल वर्मा, प्रभात प्रकाशन, पृ. 5–6)*

कुछ समय व्यतीत हो जाने पर उन्होंने दृढ़ निश्चय किया कि वे उपन्यास लिखेंगे जिसमें इतिहास के रंग रेशे हों। इतिहास के अचेतन ढाँचे को सचेत करने के लिए उन्हें उपन्यास रचने के अतिरिक्त अन्य कोई साधन उचित प्रतीत नहीं हुआ। इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने अपना ऐतिहासिक उपन्यास 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' पाठकों के सामने प्रस्तुत किया था। सन् 1947 में झाँसी में हिन्दू–मुसलमान तनाव बड़े जोरों से चल रहा था। एक दिन एक वयोवृद्ध–हिन्दू के सगे–संबंधियों के साथ मुसलमानों ने बुरा बर्ताव किया जिससे हिन्दुओं के मन में मुसलमानों के प्रति घृणा की भावना उत्पन्न हुई और उन्होंने निश्चय किया कि झाँसी को मुसलमानों से रहित कर दिया जायेगा लेकिन योजना को पूर्ण करने से पूर्व ही वर्माजी को इस बात का पता चल गया। इन्होंने इस घृणित कार्य को रोक दिया और इस दिन अनेक निर्दोष लोगों की जान बचाई। हिन्दु–मुस्लिम के मध्य सौहार्द्र की भावना का परिचय भी उनके 'माधवजी सिंधिया' नामक उपन्यास में मिलता है। वर्माजी की सहिष्णुता का परिचय 'माधवजी सिंधिया' नामक उपन्यास के इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। जब इब्राहीम खाँ कहता है – ''वह मुसलमान, मुसलमान कहलाने लायक नहीं जो दूसरे मुसलमानों को बेईमानी करने या अपने मुल्क के खिलाफ कोशिश करने के लिए बरगलावे।''★ *(माधवजी सिंधिया, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड़, पृ. 256)*

उस युग के सभी साहित्यकारों पर गाँधीजी का प्रभाव किसी न किसी रूप में पड़ा। राजनैतिक हलचलें वर्माजी को विद्यार्थी जीवन से ही छूती रही। वकालत प्रारंभ करने के साथ–साथ वर्माजी सक्रिय रूप से राजनीति से भी जुड़ गये। जन सेवा और राजनीति के प्रति इनकी रुचि धीरे–धीरे बढ़ने लगी। बात सन् 1918 की है, जब झाँसी में 'इनफ्लूएन्ज़ा' का भीषण रूप चारों ओर फैल गया था, उस समय वर्माजी ने पीड़ितों की सेवा की तथा साथ ही साथ मृतकों की

लाश ढोने तथा दाह–कर्म करनेवाले सेवकों के समूह में सम्मिलित हो गये। अपने उत्साह की चर्चा करते हुए वे स्वयं लिखते हैं – ''बन्देमातरम् कहते–कहते लाश ढोते थे–'राम नाम सत्य है' की अपेक्षा अधिक स्फूर्ति मिलती थी।''★ *(अपनी कहानी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड़, पृ. 81)* राजनैतिक मतभेद के कारण वर्माजी कॉंग्रेस पार्टी से विरक्त हो गये, लेकिन गाँधीजी के प्रति उनका श्रद्धा भाव ज्यों का त्यों बना रहा।

गाँधीजी का वर्माजी पर विशिष्ट प्रभाव पड़ा क्योंकि गाँधीजी ने सर्वप्रथम समाज में नारी के गिरे हुए स्तर को ऊँचा उठाने का भरसक किया। वर्माजी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में नारियों को बहुत ऊँचा दर्जा दिया है। उनके दृष्टिकोण में नारी दुर्गा का अवतार है। नारी कभी भी अशक्तता सहन नहीं कर सकती। उनकी नारियाँ साहसी, संयमी, कर्तव्यनिष्ठ, कष्ट–सहिष्णु और वीरांगना हैं। 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' नामक उपन्यास में 'लक्ष्मीबाई' के चरित्र को दर्शाते हुए वर्माजी का मानना है कि – ''ऐसी नारियाँ स्वयं इतिहास का निर्माण करती हैं, इतिहास उनका नहीं।''★★ *(हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, डॉ. त्रिभुवनसिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, पृ. 280)*

इसके साथ–साथ गाँधीजी के द्वारा अपनाये गये समाज कल्याण एवं जन सेवा के कार्य से भी वर्माजी प्रभावित हुए। वर्माजी का समाज कल्याण का भाव उनके उपन्यास 'अमरबेल' में निर्धारित 'सनेही' नामक पात्र के द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि ''समाज की आर्थिक प्रगति का शासन वैज्ञानिक योजनाएँ करें और दोनों को प्राण शक्ति अध्यात्म दे तो समाज का निरन्तर कल्याण होता रहे।''★★★ *(अमरबेल, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड़, पृ. 302)*

उनके उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं को भी लिया गया है। 'मृगनयनी' नामक उपन्यास में वर्माजी अटल और लाखी का अन्तर्जातीय विवाह कराकर जाति–पाँति की समस्या का निवारण करते हैं। परस्पर सहायता की भावना,

व्यक्ति में प्रेम की भावना के जागरण का कारण भी बन जाती है। जैसे 'टूटे काँटे' नामक उपन्यास में शुबराती और मोहनलाल एक दूसरे की सहायता करते हुए मित्रता की डोर से बँधे जाते हैं। मित्रता का यह भाव न केवल जाति–पाँति वरन् धर्म के संकीर्ण बंधनों से भी व्यक्ति को ऊपर उठा देता है।

मनुष्य को अपना जीवन भली–भाँति चलाने के लिए श्रम की उपयोगिता को स्वीकार करना चाहिए। जब मनुष्य में ताकत है, तभी वह देश की आर्थिक स्थिति में सुधार ला सकता है। गाँधीजी ने देशवासियों को श्रम करने के लिए प्रेरित किया इसी विचारधारा को अपनाते हुए वर्माजी ने अपना 'सोना' नामक उपन्यास में रूपा नामक पात्र के द्वारा श्रम के महत्व को समझाया है। वर्माजी के साहित्य का मूल्यांकन करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने कहा है – ''स्वयं तटस्थ रहकर घटनाओं के घात–प्रतिघात, कथोपकथन आदि के द्वारा चरित्रसृष्टि, बुंदेलखंडी का पुत देते हुए पात्रानुकूल भाषा तथा उपमा प्रधान, धारा प्रवाह और रोचक शैली का प्रयोग इनके लेखन की अन्य विशेषताएँ हैं। समग्रतः वे हिन्दी साहित्य के अत्यन्त मूल्यवान हस्ताक्षर हैं।''★ *(भारतीय साहित्य कोश, सम्पादक–डॉ. नगेन्द्र, पृ. 1155)*

इस तरह वृंदावनलाल वर्मा का जीवन दर्शन एवं विचारधारा उनके उपन्यासों से स्पष्ट ज्ञात हो जाती है। इनकी दृष्टि सर्वदा राष्ट्र के पुनः निर्माण की ओर रही है। भारत के पतन के मूल कारण रूढ़ि जर्जर समाज को इन्होंने अपनी सभी प्रकार की रचनाओं में प्रयोगशाला बनाया है तथा सामाजिक कुरीतियों की ओर इंगित किया है। ये श्रम के महत्व के प्रबल पोषक हैं। वर्माजी मानव जीवन के लिए प्रेम को एक आवश्यक तत्व मानते हैं। यही नहीं, उनके विचार से प्रेम एक साधना है जो साधक को सामान्य भूमि से उठाकर उच्चता की ओर ले जाती है। जीवन के प्रति इनका दृष्टिकोण प्रायः वही है, जिसका प्रतिपादन प्राचीन भारतीय संस्कृति करती है। इनके विचार से मनुष्य **कर्म करने का अधिकारी है फल** का नहीं।

4.3. भाषा–शैली एवं शिल्प :

वर्माजी द्वारा विशाल परिमाण में रचित साहित्य के अनुपात से ही उनकी भाषा भी संपन्न है। उनके द्वारा रचित कृति किसी भी वर्ग अथवा किसी भी देशकाल से संबंध रखनेवाली हो बुंदेली भाषा उसमें अपना स्थान सुरक्षित किए बिना नहीं मानती। वर्माजी की भाषा में बिना किसी संकोच के सभी भाषाओं के शब्द, ग्रामीण प्रयोग और प्रचलित मुहावरे एक साथ–मिल जाते हैं। उनकी भाषा अवसरानुकूल बदलती रहती है।

वर्माजी की शैली, यों तो विविध प्रकार की है। फिर भी सुविधा के लिए उसको इन चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। 1. वर्णन प्रधान शैली, 2. भावुकता प्रधान शैली, 3. विचार–प्रधान शैली, 4. हास्य–व्यंग्य प्रधान शैली।

मुख्यतः इनकी शैली वर्णनात्मक है, जिसमें रोचकता, धाराप्रवाहिता दोनों गुण वर्तमान हैं। ये पात्रों के चरित्र–विश्लेषण में तटस्थ रहते हैं। पात्र अपने चरित्र का परिचय घटनाओं, परिस्थितियों एवं कथोपकथन से स्वयं दे देते हैं। अधिकतर भाषा पात्रानुकूल होती है। इनकी भाषा में बुंदेलखंडी का परिचायक है। वर्णन जहाँ भावप्रधान होता है वहाँ भी इनकी शैली अधिक अलंकारमय न होकर मुख्यतः उपयुक्त उपमा विधान से संयुक्त दिखाई देती है।

वर्माजी के शिल्प की सबसे पहली बात तो विषयवस्तु के चुनाव और उसके संयोजन की है। इसके लिए वर्माजी इतिहास, दंतकथाओं और दैनिक जीवन–तीनों स्रोतों से अपने विषय का चुनाव करते हैं। पात्रानुकूल भाषा वर्माजी के शिल्प का एक महत्वपूर्ण अंग है। उनके बुंदेलखंडी पात्र बुंदेली भाषा बोलते हैं, पठान बिगड़ी हुई हिन्दी, कुछ और क्लिष्ट भाषा, अँग्रेज़, अँग्रेज़ी बोलते हैं। घटना–संयोजन, विषय–चुनाव, रेखाचित्रांकन–कला, चारित्रिक विकास, पात्रानुकूल भाषा और संवाद–सौष्ठव से वर्माजी का शिल्प निखरा हुआ है।

5. वर्माजी के बारे में विभिन्न दिग्गजों के कथन एवं विचारों का अभिव्यक्तिकरण :

1. *डॉ. वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यासों और छोटी कहानियों द्वारा हिन्दी साहित्य का संवर्धन किया। उनकी लम्बी साहित्य सेवा के कारण देश ने उन्हें आदर और सम्मान दिया। उनके निधन से जो स्थान खाली हुआ है भरना कठिन है।*

स्व. माननीया इंदिरा गाँधी
–भूतपूर्व प्रधानमंत्री, भारत सरकार

2. *हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार डॉ. वृंदावनलाल वर्मा की कृतियों का सम्मान भारत के सभी भाषा क्षेत्रों में हुआ है। ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में उनका स्थान अद्वितीय है।*

माननीय श्री. वी.के.आर.वी. राव
–भूतपूर्व शिक्षामंत्री, भारत सरकार

3. *श्री. वृन्दावनलाल वर्मा एक सफल और ख्याति प्राप्त उपन्यासकार हैं, उनके पात्र बहुत सजीव हैं, उनके विचार, आचार और अन्तर्वृत्तियों में आज हमारे ग्रामीण समाज के बदलते हुए रूप का आभास मिलता है।*

स्व. माननीय लाल बहादुर शास्त्री
–भूतपूर्व प्रधानमंत्री, भारत सरकार

4. *साहित्यकार वृंदावनलाल वर्मा को पाकर हमारे भारत राष्ट्र का मस्तक ऊँचा हुआ है।*

स्व. श्री. वियोगी हरि

5. *वर्माजी की कृति प्रशंसा की अपेक्षा नहीं रखती। आज के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार वे हैं।*

स्व. डॉ. अमरनाथ झा

हिन्दी साहित्य जगत में ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में ही वृंदावनलाल वर्मा का कृतित्व विशेष महत्व रखता है। इससे पूर्व हिन्दी साहित्य जगत में ऐसा कोई उपन्यासकार नहीं हुआ, जिसने इतनी व्यापक भावभूमि पर इतिहास को प्रतिष्ठित करके उसके पीछे निहित कथा तत्व को शक्ति–संलग्नता और अर्न्तदृष्टि के साथ सूत्रबद्ध किया हो। वृंदावनलाल वर्मा के अनेक उपन्यासों में वास्तविकता 'इतिहास रस' की उपलब्धि होती है। इस दृष्टि से वे हिन्दी के अन्यतम उपन्यासकार हैं। बाद के पीढ़ी के लेखकों में से कितने ही रचनाकार ऐतिहासिक उपन्यास लेखन में वर्माजी से भी आगे बढ़ गये। जैसे राहुल सांस्कृत्यायन, भगवतशरण उपाध्याय, रांगेय राघव आदि। किन्तु एक ऐसे प्रदेश विशेष के उपन्यासकार के नाते, जिसकी अपनी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विशेषताएँ भी हों, वृंदावनलाल वर्मा ही सर्वोपरी ठहरते हैं।

वर्माजी वस्तुतः ऐतिहासिक उपन्यासों के सम्राट हैं। वे हिन्दी और हिन्दुस्तान दोनों के लिए एक शक्ति बनकर उभरे। उनकी विशिष्टता यह है कि उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों को सृजनात्मक ढंग से प्रेरणादायी पृष्ठभूमि में अंकित कर भविष्य के लिए एक निश्चित मार्ग का संकेत किया। सचमुच वर्माजी एक बीते जमाने की याद और आनेवाले युग की बानगी जैसे हमारे बीच में आज भी विद्यमान हैं।